The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 7 | July 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

# खोरठा लोकगीतों में पर्यावरणीय चेतना और प्रकृति-बोध: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

उर्मिला कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर खोरठा विभाग,राँची विश्वविद्यालय, राँची, urmilarkm94@gmail.com

**DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.22097462**

**ARTICLE DETAILS**

**Research Paper**

**Received:** 23-06-2026

**Accepted:** 16-07-2026

**Published:** 21-08-2026

**Keywords:**

*पारिस्थितिक-साहित्य, खोरठा लोकगीत, पर्यावरणीय चेतना, प्रकृति-बोध, स्वदेशी ज्ञान, सतत विकास, झारखंडी लोकाचार।*

**ABSTRACT**

यह शोध-पत्र खोरठा लोकगीतों में निहित पर्यावरणीय चेतना और प्रकृति-बोध का गहन पारिस्थितिक-साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। झारखंड के छोटा नागपुर पठारी भू-भाग की मूल निवासी संस्कृति में प्रकृति केवल एक भौतिक परिवेश या पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि जीवन का मुख्य आधार और एक पूजनीय इकाई है। यह अध्ययन करम, सोहराय और विभिन्न ऋतु-गीतों के माध्यम से यह रेखांकित करता है कि कैसे खोरठा लोक-साहित्य में प्राकृतिक संसाधनों के प्रति अगाध सम्मान, जैव-विविधता का संरक्षण और मनुष्य-प्रकृति के बीच एक प्रगाढ़ सहजीवी संबंध को संजोया गया है। वर्तमान वैश्विक जलवायु संकट और पारिस्थितिक क्षरण के दौर में, यह शोध खोरठा लोक-ज्ञान की प्रासंगिकता को वैश्विक अकादमिक पटल पर स्थापित करने का प्रयास करता है।

## 1. प्रस्तावना

### 1.1 वर्तमान वैश्विक परिदृश्य और पर्यावरणीय संकट

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरणीय संकट, ग्लोबल वार्मिंग जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन मानव सभ्यता के समक्ष सबसे बड़ी चुनौतियाँ बनकर उभरी हैं। आधुनिकता, विकास और औद्योगीकरण की अंधी दौड़ ने प्रकृति और मनुष्य के बीच के आत्मीय, सहज और सहयोगात्मक संबंधों को विच्छेदित कर दिया है।

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

प्रकृति को आज केवल एक 'उपभोग की वस्तु' मान लिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक असंतुलन जैव-विविधता का ह्रास और जल-जंगल-जमीन का विनाश हुआ है। इस गंभीर संकट के बीच साहित्य केवल मनोरंजन का साधन न रहकर, मानवीय चेतना को झकझोरने और प्रकृति के साथ पुनः तादात्म्य स्थापित करने का एक सशक्त माध्यम बन गया है। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि से 'पारिस्थितिक-साहित्य' का जन्म हुआ है, जो साहित्य और प्रकृति के अंतर्संबंधों का पुनरावलोकन करने की एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

**1.2 झारखंड: भौगोलिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक धरातल**

भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक मानचित्र पर झारखंड एक ऐसा विशिष्ट भू-भाग है, जहाँ की माटी, वन, पहाड़ और नदियाँ सदियों से संघर्ष, जीवन-संघर्ष और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की अनूठी गाथा कहती रही हैं। यह क्षेत्र अपनी समृद्ध खनिज संपदा के साथ-साथ अपनी विशिष्ट आदिवासी और मूलवासी संस्कृति के लिए जाना जाता है, जिनका जीवन प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति पर आधारित है।

झारखंड की संस्कृति में प्रकृति केवल बाहरी आवरण नहीं है, बल्कि वह जीवन का प्राण-तत्व है। यहाँ के पर्व-त्यौहार (जैसे—सरहुल, कर्मा, सोहराई) और रीति-रिवाज सीधे तौर पर पेड़-पौधों, ऋतुओं और वन्य जीवों की वंदना से जुड़े हैं। यह क्षेत्र प्राकृतिक सौंदर्य और जनजातीय जीवन-दर्शन का एक ऐसा संगम है जो पारिस्थितिक अध्ययन के लिए असीम संभावनाएँ प्रस्तुत करता है।

**1.3 खोरठा लोकगीत: मौखिक परंपरा और पर्यावरणीय दस्तावेज**

इस क्षेत्र की प्रमुख जन-भाषा खोरठा के लोकगीत मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी सहज रूप से हस्तांतरित होते रहे हैं। ये लोकगीत महज मनोरंजन, उल्लास या संस्कारों की अभिव्यक्ति भर नहीं हैं, बल्कि इनमें झारखंड की विशिष्ट पारिस्थितिकी, जन-जीवन और प्रकृति के साथ उनके आत्मीय संबंधों का जीवंत दस्तावेज सुरक्षित है।

खोरठा लोकगीतों में ऋतु-परिवर्तन, कृषि कार्य, वन-संपदा, नदियाँ और पशु-पक्षी अत्यंत सजीव रूप में चित्रित हुए हैं। ग्रामीण समाज ने प्रकृति के हर उपादान को अपनी अनुभूतियों का हिस्सा बनाया है। इन गीतों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि लोक-समाज ने बिना किसी औपचारिक पर्यावरण विज्ञान की किताबों के, सदियों से पर्यावरण संरक्षण के मूल मंत्र को अपने आचरण और गीतों में आत्मसात कर रखा था।

**1.4 खोरठा पद्य साहित्य और प्रकृति की केंद्रीयता**

खोरठा पद्य साहित्य के विकास क्रम का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के रचनाकारों ने प्रकृति को हमेशा अपनी सर्जनात्मक दृष्टि के केंद्र में रखा है। इस परंपरा में कई हस्ताक्षर शामिल हैं:

- श्रीनिवास पानुरी: जिनका सृजन माटी की सोंधी सुगंध और मानवीय संवेदनाओं के साथ-साथ प्रकृति के विविध रूपों से ओत-प्रोत है।

- डॉ. ए. के. झा (झर-पाहाड़): जिन्होंने खोरठा लोक-विज्ञान, भाषा-शैली और प्रकृति के उपादानों को अपने साहित्य में वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि से पिरोया।
- शिवनाथ प्रमाणिक: जिनका 'दामुदरेक कोरात्र' (दामोदर घाटी विमर्श) जैसी रचनाओं में नदी संस्कृति, जल-संकट और औद्योगीकरण के दुष्प्रभावों का अत्यंत मार्मिक और यथार्थवादी चित्रण मिलता है।

### 1.5 शोध-पत्र का उद्देश्य और दायरा

यह शोध-पत्र इन्हीं लोकगीतों और खोरठा पद्य साहित्य के माध्यम से खोरठा समाज की गहरी पर्यावरणीय चेतना, प्रकृति-बोध और पारिस्थितिक दृष्टि का समाजशास्त्रीय तथा साहित्यिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। यह इस बात की भी पड़ताल करता है कि आधुनिक विकास के दौर में किस प्रकार पारंपरिक लोक-साहित्य हमें पर्यावरण संरक्षण का मार्ग दिखा सकता है।

## 2. खोरठा लोक-साहित्य में प्रकृति का बहुआयामी स्वरूप

खोरठा लोकगीतों में प्रकृति का अंकन अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। यहाँ प्रकृति मनुष्य की जीवन-संगिनी और संरक्षिका के रूप में चित्रित की गई है:

### 2.1 कृषि, ऋतुएँ और पारिस्थितिक चक्र

खोरठा क्षेत्र के लोकगीत कृषि और ऋतुओं के परिवर्तन के साथ सीधे तौर पर जुड़े हुए हैं। 'रोपाई' (धान की रोपाई), 'कटनी' (फसल कटाई) और विभिन्न मौसमी पर्वों के दौरान गाए जाने वाले गीतों में मिट्टी की उर्वरता, वर्षा की बूंदों और मानसूनी हवाओं का सूक्ष्म वर्णन मिलता है। यह वर्णन केवल सौंदर्य-बोध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कृषि पारिस्थितिकी के उन सिद्धांतों को रेखांकित करता है जहाँ प्रकृति के चक्र के अनुसार ही मानवीय श्रम की दिशा तय होती है।

### 2.2 वन, वृक्ष और लोक-संस्कृति

झारखंड के आदिवासियो और मूलवासियों का जीवन वनों के बिना अकल्पनीय है। खोरठा लोकगीतों में महुआ, साल (सखुवा), पलाश और करम के पेड़ों का बार-बार उल्लेख मिलता है। 'करम पर्व' के अवसर पर गाए जाने वाले गीत प्रकृति के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। वृक्षों की पूजा और उनकी रक्षा का संदेश इन गीतों की अंतरआत्मा में बसा हुआ है, जो आधुनिक 'वृक्ष-रोपण' अभियानों से कहीं अधिक गहरा सांस्कृतिक संबंध स्थापित करता है।

**तालिका 1: खोरठा लोक-संस्कृति के प्रमुख पर्व, संबंधित लोकगीत और पर्यावरणीय महत्व**

| क्रम संख्या | पर्व / उत्सव | पर्यावरणीय संदर्भ / प्रकृति से जुड़ाव | मुख्य लोकगीतीय संदेश / बोध |
|---|---|---|---|
| 1. | **करम पर्व** | वृक्ष पूजा (सखुवा और करम की डाल) | वनों का संरक्षण, जैव-विविधता और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता |
| 2. | **सोहराय पर्व** | पशु-धन (गाय, बैल) की पूजा और सह-अस्तित्व | जीव-मात्र के प्रति दया, मानव-पशु सहजीवी संबंध |
| 3. | **टुसू पर्व** | फसल कटाई, सूर्य की गति और ऋतु परिवर्तन | कृषि चक्र के प्रति सम्मान और जल-मिट्टी की उर्वरता का उत्सव |
| 4. | **रोपाई गीत** | मानसूनी वर्षा, मिट्टी की सौंधी गंध और बीज अंकुरण | कृषि पारिस्थितिकी और जल संरक्षण का संदेश |

## 3. पर्यावरणीय चेतना के दार्शनिक आधार

खोरठा लोकगीतों और लोक-साहित्य का सूक्ष्म एवं गंभीर पाठ करने पर यह स्पष्ट होता है कि इनमें आधुनिक पारिस्थितिक दर्शन के समकक्ष गहरी दार्शनिक दृष्टि निहित है। खोरठा समाज ने प्रकृति को कभी भी अपने अधीन या उपभोग की वस्तु नहीं माना, बल्कि उसे एक सहचर, रक्षक और जीवन-प्रदाता के रूप में स्वीकार किया है।

इस पर्यावरणीय चेतना के मुख्य रूप से तीन प्रमुख दार्शनिक स्तंभ आधारशिला के रूप में विद्यमान हैं, जिनका विस्तृत विवरण शोध की दृष्टि से निम्नलिखित है:

### 3.1 संसाधनों के प्रति संयम और सम्मान

आधुनिक विकास मॉडल 'असीमित दोहन' पर आधारित है, जबकि खोरठा लोक-संस्कृति का मूल मंत्र 'संयम और सम्मान' है।

- जल संरक्षण और पवित्रता: खोरठा लोकगीतों में जल स्रोतों—जैसे नदियाँ, कुएँ, पईन (सिंचाई नहरें) और झरने—के प्रति अगाध श्रद्धा और उनके संरक्षण का भाव निहित है। पानी को महज एक रासायनिक यौगिक या उपयोग की वस्तु न मानकर 'अमूल्य जीवन-तत्त्व' और प्रकृति का वरदान माना गया है।

- पारिस्थितिक नैतिकता: लोकगीतों में जल-स्रोतों की पवित्रता बनाए रखने, उन्हें गंदा न करने और आवश्यकतानुसार ही संसाधनों का उपयोग करने के स्पष्ट निर्देश मिलते हैं। यह दृष्टिकोण आधुनिक 'सतत विकास' की अवधारणा से पूरी तरह मेल खाता है।

**3.2 समग्रता और सह-अस्तित्व**

खोरठा लोक-संस्कृति पश्चिमी जगत की उस 'मानव-केंद्रित' सोच के विपरीत खड़ी है, जो मनुष्य को सृष्टि का सर्वोच्च और एकमात्र स्वामी मानती है। इसके स्थान पर यह 'समग्रता और सह-अस्तित्व' का पाठ पढ़ाती है।

- सोहराय पर्व और जीव-प्रेम: इसका सबसे बड़ा प्रमाण झारखंड का प्रसिद्ध त्योहार 'सोहराय' है, जिसके अवसर पर गाए जाने वाले गीत प्रकृति और जीव-मात्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं। इन गीतों में पालतू पशुओं (विशेषकर गाय और बैल), जो कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, के प्रति अगाध आदर और आभार प्रकट किया जाता है।
- पारिस्थितिक चक्र: खोरठा समाज यह भली-भांति समझता है कि मनुष्य का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है, बल्कि वन, वन्य जीव, पशु-पक्षी और नदियाँ—सभी एक ही पारिस्थितिक श्रृंखला के अभिन्न अंग हैं। एक का भी विनाश संपूर्ण व्यवस्था को ध्वस्त कर सकता है।

**3.3 ऋतु-निष्ठा और संतुलन**

प्रकृति के नियमों के विरुद्ध जाकर कृत्रिम जीवनशैली अपनाने की प्रवृत्ति को खोरठा लोक-संस्कृति में हमेशा नकारात्मक और विनाशकारी माना गया है।

- ऋतु-अनुकूल जीवनशैली: लोकगीतों के माध्यम से यह संदेश जन-मन तक पहुँचता है कि मनुष्य को प्रकृति के चक्र (ऋतु-परिवर्तन) के साथ तालमेल बिठाकर चलना चाहिए। किस ऋतु में कौन सा कार्य करना चाहिए, क्या खाना चाहिए और पर्यावरण के किस घटक को संरक्षित करना है—यह सब लोकगीतों के संस्कारों में निहित है।
- संतुलन का संदेश: ग्रीष्म, वर्षा, और शीत ऋतु के आगमन पर गाए जाने वाले गीत (जैसे पावस गीत या डमकच) प्रकृति के मिजाज के साथ मनुष्य के भावनात्मक जुड़ाव को दर्शाते हैं। यह ऋतु-निष्ठा पर्यावरण में प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने की एक सहज और अचूक लोक-विधि है।

**4. पारिस्थितिक संकट और लोक-साहित्य की प्रासंगिकता**

वर्तमान भूमंडलीकरण और नव-उदारवाद के दौर में जहाँ पूरा विश्व गंभीर पर्यावरणीय संकटों का सामना कर रहा है, वहीं झारखंड का क्षेत्रीय साहित्य और लोक-संस्कृति इन समस्याओं के समाधान का एक स्वदेशी और व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करती है।

**4.1 आधुनिकता, औद्योगीकरण और प्राकृतिक असंतुलन**

आधुनिकता की अंधी दौड़, अनियंत्रित शहरीकरण, अंधाधुंध खनन और औद्योगीकरण ने झारखंड के प्राकृतिक संतुलन को गहरी क्षति पहुँचाई है। विकास के जिस पश्चिमी मॉडल को यहाँ थोपा गया, उसने केवल जल-जंगल-जमीन का दोहन किया, जिसके परिणामस्वरूप सदियों से चला आ रहा पारिस्थितिक तंत्र छिन्न-भिन्न हो गया। खदानों से उड़ती धूल और कारखानों से निकलते जहरीले रसायनों ने न केवल वायु और जल को प्रदूषित किया है, बल्कि यहाँ के मूल निवासियों को उनके प्राकृतिक आवास से बेदखल कर दिया है।

**4.2 'दामुदरेक कोरात्र' (दामोदर की गोद): विस्थापन और प्रदूषण का विमर्श**

खोरठा साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार शिवनाथ प्रमाणिक की प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य कृति **'दामोदरेक दामुदरेक कोरात्र'** (दामोदर की गोद में) आधुनिक विकास के विनाशकारी स्वरूप का एक प्रामाणिक और मार्मिक दस्तावेज है। इस कृति में अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उकेरा गया है कि किस प्रकार झारखंड की जीवन-रेखा मानी जाने वाली 'दामोदर नदी' कोयला खदानों और कारखानों के कचरे के कारण एक प्रदूषित नाले में तब्दील हो गई है।

कवि ने नदी के तटवर्ती समाज के विस्थापन के दर्द को स्वर देते हुए यह स्पष्ट किया है कि विकास के नाम पर प्रकृति का यह क्रूर विध्वंस लोक-समाज को कतई स्वीकार्य नहीं है। यह कृति एक चेतावनी है कि प्रकृति के साथ किया गया बलात्कार अंततः मानव सभ्यता के विनाश का ही कारण बनेगा।

**4.3 'ग्रीन फिलॉसफी' (हरित दर्शन) और मानव-प्रकृति एकात्मता**

ऐसे घोर संकट के समय में खोरठा लोकगीत और लोक-साहित्य हमें हमारी उस समृद्ध सांस्कृतिक थाती की याद दिलाते हैं, जहाँ मनुष्य और प्रकृति के बीच शोषण या प्रभुत्व की कोई दीवार नहीं थी। खोरठा लोक-साहित्य एक अंतर्निहित **'ग्रीन फिलॉसफी'** या 'हरित दर्शन' प्रदान करता है।

यहाँ के गीतों में पेड़-पौधे, नदियाँ और पहाड़ मूक या जड़ वस्तुएँ नहीं हैं, बल्कि वे सुख-दुख साझा करने वाले सजीव पात्र हैं। यह 'ग्रीन फिलॉसफी' आज के आधुनिक पर्यावरणविदों और पारिस्थितिकी विज्ञानियों के लिए गहन अध्ययन का विषय है, क्योंकि यह सिखाती है कि प्रकृति का संरक्षण कानून से नहीं, बल्कि आत्मीय जुड़ाव से संभव है।

**4.4 जलवायु परिवर्तन और स्वदेशी ज्ञान की ओर वापसी**

यदि वर्तमान वैश्विक समाज को जलवायु परिवर्तन , ग्लोबल वार्मिंग और प्राकृतिक आपदाओं के विनाशकारी प्रभावों से निपटना है, तो केवल तकनीकी समाधान पर्याप्त नहीं होंगे। इसके लिए हमें अपने इन पारंपरिक और स्वदेशी ज्ञान प्रणालियों की ओर लौटना ही होगा। खोरठा लोक-साहित्य हमें यह स्पष्ट संदेश देता है कि सह-अस्तित्व, संसाधनों का संयमित उपभोग और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव ही भविष्य की पीढ़ियों के लिए पृथ्वी को रहने योग्य बनाए रख सकता है।

## 5. निष्कर्ष

यह विश्लेषणात्मक अध्ययन इस अकादमिक निष्कर्ष पर पहुँचता है कि खोरठा लोकगीत केवल सांस्कृतिक धरोहर मात्र नहीं हैं, बल्कि वे पर्यावरण प्रबंधन और संरक्षण के स्वदेशी शास्त्र हैं। इन गीतों में निहित प्रकृति-बोध आधुनिक पारिस्थितिक-साहित्य के सिद्धांतों के पूर्णतः अनुकूल है। खोरठा साहित्यकारों और लोक-गायकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह संदेश दिया है कि पर्यावरण की रक्षा के बिना मानव अस्तित्व की कल्पना असंभव है। वैश्वीकरण और पर्यावरणीय संकट के इस दौर में, खोरठा लोक-साहित्य का यह पक्ष इसे वैश्विक अकादमिक फलक पर एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक अध्ययन क्षेत्र बनाता है।

## संदर्भ सूची

1. महतो, डॉ. गजाधर. 'खोरठा लोकसाहित्य: एक अध्ययन', मानभूम प्रकाशन, धनबाद, 2008.
2. शर्मा, डॉ. रामविलास. 'भारतीय संस्कृति और पर्यावरण चेतना', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 82-88.
3. प्रमाणिक, शिवनाथ, दामुदरेक कोराञ, झारखंड झरोखा, राँची, 2014.
4. गोस्वामी, प्रफुल्ल. 'लोकसंस्कृति और पर्यावरण', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005.
5. महतो, बंशीधर. 'खोरठा लोकगीत: सांस्कृतिक और पर्यावरणीय आयाम', झारखंड ग्रंथ अकादमी, पृष्ठ 85-90.
6. शर्मा, डॉ. कमल किशोर (2012). 'पर्यावरण, लोक-संस्कृति और साहित्य', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
7. बुटाना, डॉ. सुरेश (2018). 'इकोक्रिटिसिज्म: सिद्धांत और प्रयोग', अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
8. गुप्ता, डॉ. रणजीत (2005). 'झारखंड: इतिहास, समाज और संस्कृति', पुस्तक मंच, पटना।